IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिन्दी उपन्यासों में नारी जन जीवन

(Women's Life in Hindi Novels)

Author – Dr. Keshrimal Ninama, Assistant Professor Hindi, Govind Guru Tribal University, Banswara, Rajasthan.

Abstract : नारी से समाज सृष्टि, प्रेरणा, शक्ति, तुष्टि, प्रेम आदि सब कुछ पाता है। उसके विकास का इतिहास मानव सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास है। मानव समाज के बदलने वाले सामाजिक मूल्यों को आंकने के जितने भी साधन हैं नारी उन सबमें प्रधान है। इसलिए हिन्दी साहित्य में नारी जीवन के विविध रूप अंकित हुए। किसी भी देश का महत्व एवं वहाँ की उपलब्धि, व्यक्ति के द्वारा ही संभव है। व्यक्ति है तभी विकास और उन्नति है। किसी भी देश के समाज में परिवर्तन का श्रेय स्त्री और पुरूष दोनों का बराबर होता है अर्थात दोनों की समान सहभागिता से ही विकास संभव है। हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचन्द का आगमन एक नये मोड़ का सूचक है। उसमें न तो नीति और उपदेश के अनेकानेक उद्धरण होते हैं और न तिलिस्म के जादुई खण्डहर और वातावरण। प्रेमचन्द ने ख्याली दुनिया में मस्त हिन्दी के पाठकों को यथार्थ से परिचय कराया। नागार्जुन ने भी प्रेमचन्द की ही यथार्थवादी जनवादी कथा परम्परा को आत्मसात करके उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यह कहा जा सकता है कि नागार्जुन के साहित्य में विचारात्मक विसंगतियाँ और अन्तर्विरोध है।

Keywords : प्रेमचन्द, पारिवारिक जिम्मेदारियां, सामाजिक रूढ़ियां, नारी स्वतंत्रता, शिक्षा, मानसिक स्थिति, प्रेमचंद, आधुनिक उपन्यास, संवेदनाएं, समकालीन समस्याए प्रगतिशील नारी, महादेवी वर्मा।

Article : प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में नारी के कई रूपो को दिखाया। भूतकाल और वर्तमान काल की मुष्किल परिस्थितियों के साथ–साथ उन्होने भविष्य को भी काफी आगे तक देखा है। उनके नारी पात्र विमर्ष का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करते है। उनके युग में नारी कई अधिकारों से वंचित थी। ये वो दौर था, जब शारीरिक सुंदरता, निर्बलता और उनके देवीय गुणों का महिमा मंडन कर स्त्री को घर के अन्दर, कैद कर दिया गया। परिवार पर पुरूषों ने अपना वर्चस्व कायम रखा। स्त्रियों को परावलंबी और मूकदर्षिका बना दिया। ऐसे में उनकी स्थिति गिरते–गिरते गुलाम जैसी हो गई। आर्थिक निर्भरता ने उनसे पारिवारिक निर्णय लेने का अधिकार छीन लिया। जहाँ देवी पूजिता होनी चाहिये थी वहाँ नारी, शोषित, अपमानित बना दी गई। इस स्थिति को सुधारने के लिये प्रेमचन्द ने साहित्य का सहारा लिया। प्रेमचन्द के उपन्यासो में स्त्री विमर्ष की स्थिति काफी मजबूत है। युग–दृष्टा और युग स्रष्टा प्रेमचन्द ने स्त्री को पुरूष से ऊपर माना है। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र महज कल्पना नही है, बल्कि तत्कालीन युग की जीती–जागती तस्वीर है। उनके उपन्यासो की नारी पात्रों ने बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा तथा आदि कई समस्याओ को झेला हैं, जिया है विरोध के स्वर मुखर किये है। अनमोल विवाह में स्त्रियो का अपमानित होना, नौकरानियों से निम्नत्तर व्यवहार यहाँ तक की समाज में बेटियाँ बोझ मानी गई। इन सब कुरूतियो को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में दिखाया है। इन कुरूतियो को दूर करने के लिये उन्हें नारी का आत्मनिर्भर होना स्वीकार है। उनके उपन्यासों में महिला पात्र, माता, विधवा, प्रेमिका, परिणीता, मेहनतकष, समाज सेविका जैसे कई रूपो में अमिट छाप छोडती है। "आज हिन्दुस्तान नारी को कान्तिकारी बनाने के लिये जिस सषक्त दौर से

गुजर रहा है और जिस स्त्री विमर्ष की बातें जोर–षोर से हर मंच पर उठायी जाती है उसे प्रेमचन्द बहुत पहले ही सषक्त साबित कर चुके है। प्रेमचन्द के साहित्य की नारी महज नारी नहीं है। वह इस भौतिक जगत से कहीं ऊपर उठकर शक्ति का रूप धारण कर लेती है। जिसके समावर्णन को पढ़कर ऐसा लगता है कि मानो समाज में उसने ही संतुलन कायम रखा है।" उपन्यासो ने सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार प्रेमचन्द और उनके साहित्य सृजन में स्त्रियों को अलग ही मुकाम दिया है। उन्होने बडी बिद्दत से समाज की समस्याएँ उजागर की है। उनकी कलम में नारी को कमजोर अबला नहीं बनाया बल्कि सबल और सषक्त बनाया है। "बडा आश्चर्य होता है कि जिस कोख में पुरूषों को जन्म दिया, उस नारी को पुरूषो ने कैसे अबला बना दिया। जो जन्म के लिये भी स्त्री की कोख के लिये मोहताज है, उन्होने उस स्त्री को सर्वथा महत्वहीन बना दिया।" प्रेमचन्द की लेखनी में स्त्रियाँ पारिवारिक और राजनैतिक दोनों ही क्षेत्रों में सषक्त किरदार अदा करती है। प्रेमचन्द स्त्रियों को चारदीवारी में कैद नहीं करते, उन्हे घर से बाहर भी निकालते है और चारदीवारी के अन्दर भी उनकी महत्ता को स्थापित करते है। कर्मभूमि उनके सबसे प्रसिद्ध उपन्यासों में एक है। कर्मभूमि भारत की राजनीतिक स्थिति पर लिखा गया उपन्यास है। जिसने लोकप्रियता के नये आयाम गढ़े। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने भारत में अंग्रेजी शासन के विरोध मे पुरूषो के साथ–साथ महिला को भी खडा किया है। उन्होने नारी को केवल कोमलांगी और सौन्दर्य की प्रतिभूति नहीं माना है अपितु उसे कर्मठ और पुरूषो के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाली संघर्षषील महिला का स्थान दिया है। उपन्यास की स्त्री पात्र सुखदा, सुख–सुविधाओं से पली हुई सभ्य सुषिक्षित महिला है लेकिन वह इन गुणों से अपने पति को मोहपाष में नहीं बांध पाती, जबकि साधारण सूरत वाली कर्मठ नारी नायक अमरकांत को प्रभावित करती है और जब सुखदा अपनी इस दिनचर्या को छोड़ सामान्य स्त्री बन जाती है तो वह आत्मषक्ति से परिपूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभरती है। जो समाज कल्याण के लिये जेल जाने से भी गुरेज नहीं करती और इसमें स्वयं को झोकने वाली प्रभावषाली व्यक्तित्व बन जाती है। सुखदा का घर परिवार की जिम्मेदारियों को निभाना, पति का साथ ना होते हुये भी बाहर नौकरी करना, लोकहित में कार्य करना, स्वतन्त्रता आन्दोलन में पुरुषो के साथ जेल जाना स्त्री के चारित्रिक विषेषता का सषक्त उदाहरण है। राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रेमचन्द युगीन नारियो की दखल थी। गबन की जालपा और रंगभूमि की सोफिया अपनी वैचारिक दृढता की कहानी स्वयं कहती है। गबन में जालपा एक ओर अपने पति पर सब कुछ न्योछावर करने वाली पत्नी का किरदार निभाती है तो दूसरी ओर उसका कान्तिकारी रूप देखकर आष्चर्य होता है। जालपा सबल चरित्र का अनुपम उदाहरण है जो बिना झगड़े तत्परता और बहादुरी से जिन्दगी की जद्दोजहद से जूझती है। वह अपनी समझ से रास्ता चुनती है। रीति–रिवाज और रूढिवादी संस्कारो को नकारते हुये ज्ञान के उद्यात्त रूप को अपनाती है। गबन के पैसे से मिला चन्द्रहार उसे स्वीकार नहीं लेकिन पति का साथ भी कभी नहीं छोडती है। जालपा का यह रूप सहज ही बता रहा है कि प्रेमचन्द की दृष्टि में स्त्रियों कितनी सषक्त है। रंगभूमि की सोफिया का किरदार प्रेमचन्द ने काफी दबंग रखा है। रंगभूमि में तत्कालीन सम्पूर्ण भारत के जनमानस की व्यधा–कथा को चित्रित किया गया है। यह कालजयी कृतियो में गिनी जाती है। जिसमें नौकरषाही के साथ–साथ पूँजीवाद एवं जनसंघर्ष के ताडंव तथा सत्य अंहिसा के प्रति आग्रह को चित्रित किया गया है। ग्रामीण जीवन में उपस्थित मद्यपान तथा दुर्दषा का भयावह चित्रण है। मुंषीजी ने इस उपन्यास में देष की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को आधार बनाया है, जिसमें सोफिया एक ऐसी नारी है जो राजनीति में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेती है। प्रेमचन्द की यह नारी पात्र बहुत ही खूबसूरत है जो धर्म पर विष्वास करती है लेकिन धार्मिक अंधविष्वासों को नकार देती है। वह धर्म, त्याग और सद् विचार का अवतार है जो प्रमुखता से अपने विचार रखती है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो में सामाजिक विषयवस्तु को उभारा है। जिसमें नारियों को अहम किरदार दिये गये है। राजनीतिक क्षेत्र के साथ–साथ सामाजिक क्षेत्र में उनकी नायिकाओं ने अपनी छाप छोडी है। संघर्षरत और मेहनतकष नारियाँ उनके उपन्यास की जान है।

आर्थिक निर्भरता ने स्त्रियों को समाज में गुलाम बना दिया। वे अपनी छोटी–छोटी जरूरतो के लिये भी मोहताज बनी रही। मंगलसूत्र में प्रेमचन्द ने नारी की इस व्यथा को दिखाया है। नायक संतकुमार अपनी पत्नी से कहते है कि "जो स्त्री पुरूष पर अवलंबित हो उसे पुरूष की हुकुमत माननी पडेगी। जिस पर नारी पात्र का जवाब है कि अगर मैं तुम्हारी आश्रिता हूँ तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं जितना काम तुम्हारे घर में करती हूँ उतना अगर किसी दूसरे के घर में करूँ तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ। तब जो कमाउँगी वो मेरा होगा, बोलो। मैं चाहे प्राण दे दूँ मेरा किसी चीज पर अधिकार नहीं। तुम जब चाहो मुझे निकाल सकते हो" यह संवाद नारी की स्थिति और उसका विरोध बयान करती है।

अपनी रचनाओ में प्रेमचन्द ने सर्वथा स्त्री के आर्थिक स्वतन्त्रता एवं विकास के पक्षधर रहे है। लेकिन उन्होने भारतीय मूल्यो को कभी भी नहीं नकारा है। वे पष्चिम सम्यता के अनुकरण को नकारते थे। पाष्चात्य देषो की स्वच्छन्दता उन्हें रास नहीं आती थी। पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण की जो भावना भारत के कुछ उच्च षिक्षित नारियों में आ रही थी। प्रेमचन्द उसे चिन्ता का विषय मानते थे। भारतीयता उनके दिल में बसती थी। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने स्त्री विमर्ष पर खुलकर और जोरदार कलम चलाई है। उन्होने स्त्री को पुरूष की साथी माना है जो तत्कालीन समाज में भी प्रासंगिक है। कायाकल्प में नायक की स्त्री पूछती है " नारी के लिये पुरूष सेवा से बढ़कर और विलाप, भोग या श्रृंगार नहीं है परन्तु कौन कहता है कि नारी का यह त्याग उसकी सेवाभाव ही आज उसके अपमान का कारण नहीं हो रहा है ?" अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द ने स्त्रियो के आर्थिक स्वतन्त्रता के रास्तो को सुगम किया है। प्रेमचन्द ने आदर्षवाद का साथ भी कभी नहीं छोडा। वे पात्रो के चरित्र चित्रण में आदर्षवाद को अहम मानते हुये तत्कालीन परिस्थिति को रखते थे।

गाँवों की ओर भी इस युग के उपन्यासकारों का घ्यान गया। गाँव और शहर दोनों के जीवन का चित्रण इस युग के उपन्यासों में मिलता है।' शहर में जहाँ जनता का विरोध साम्राज्यवाद के विरुद्ध' है वहाँ गाँव में महाजनी सभ्यता के विरुद्ध। इस समय का उपन्यासकार विभिन्न स्तरों के स्वार्य को भली प्रकार समझ गया था। विभिन्न वर्गों के 'अन्तविरोधों और स्वार्थो का चित्रण 'रंगभूमि' में विभिन्न पात्रों द्वारा हुआ है। यही नहीं, इस उपन्यास में पूँजीवाद के उत्थान–पतन और औद्योगिक जटिलताओं का भी समावेश मिलता है। अपनी कुलीनता और न्याय की दाद देने वाले जमींदार और सामंत वर्ग किस प्रकार किसानों का शोषण करते हैं, यह' प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में बड़ी सशक्त शैली में व्यक्त हुआ है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों की कथावस्तु साम्राज्यवाद और सामंतवाद से संवर्प करती हुई विकास करती है, यद्यपि अन्त में वे दोनों का समन्वय सुधारवादी ढंग से कर देते हैं। प्रेमचन्द–युग में कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए। यद्यपि प्रेमचन्द ने इस ओर ध्यान नहीं दिया किन्तु वृन्दावनलाल वर्मा ने 'गढ़कुंडार' (1930) लिखकर ऐति– हासिक उपन्यास का सूत्रपात किया। इस उपन्यास के पूर्व के उपन्यासों में लेखक इतिहास के नाम पर तिलिस्म, ऐय्यारी और अतिरंजित प्रेम–कथाओं को ही प्रश्रय देते थे। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' उपन्यास भी उल्लेखनीय है। इसमें हमें गुप्त–कालीन वैभव की झाँकी मिलती है।

इस प्रकार प्रेमचन्द–युग में सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे गए। प्रेमचन्द ने प्रथम बार सामाजिक, राजनैतिक, और आर्थिक मस्याओं का चित्रण हिन्दी उपन्यास में किया। प्रारम्भ में उन्होंने यथार्थ और आदर्श 'समन्वय किया था; किन्तु धीरे–धीरे प्रेमचन्द समन्वय और आदर्शवादिता को तिलांजलि यथार्थ की कठोर भूमि पर आ गए। उन्होंने मानव की सम्भावनाओं एवं दुर्वलताओं सम्यक चित्रण किया है।

प्रेमचन्द–युग के उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का प्राधान्य था, पर अब मनोवैज्ञानिक– विश्लेषणात्मक शैली अधिकाधिक प्रचलित होती गई। प्रेमचन्द–युग की क्यावस्तु का विस्तार समुद्र की भाँति विस्तृत था, पर इन नए मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथावस्तु बहुत सीमित हो गई। अभिव्यंजना इतनी बढ़ गई कि कथा–प्रवाह और चरित्र–विकास का स्थान गौण हो गया। पात्रों की संख्या भी घट गई। इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उपन्यासकार एक सीमित परिवि के भीतर एक सीमित दृष्टिकोण से देखने लगा। अतः कथावस्तु

में एक ओर संकोच आया तो दूसरी ओर तीव्रता। स्थान, काल और क्रिया–कलापों में बुद्धिसंगत एकता आई। प्रेमचन्द–युग के उपन्यासों में विस्तार तो था किन्तु वह गहराई, तलस्पशिता एवं तीव्रता न थी जो बाद के उपन्यासों में दिखाई देती है।

प्रेमचन्द–युग में हार्डी की भाँति व्यक्ति और परिस्थिति या नियति का संघपं दिखाई देता है। किन्तु बाद में इस संघर्ष के अतिरिक्त और भी संघर्ष उभर कर आये। समाज के विकास के साथ नए संघों का उदय होता है। इन्हीं नये संघर्षों की उपज से उपन्यास विकास दिन–प्रति–दिन होता रहा। पहले व्यक्ति अपने परिवेश से संघर्ष करता था, फर वह संघर्ष क्रमशः दो वर्गों और दो परिवारों से होता हुआ दो व्यक्तियों के संघर्ष का ले उठा।' इस विकास की चरम परिणति व्यक्ति–चरित्र–प्रवान उपन्यासों मे हुई। उपन्यासों में मानव–चरित्र से व्यक्ति–चरित्र महत्वपूर्ण हो गया। व्यक्ति की व्यक्तिगत उसका मन, उसकी चेतना ही साहित्य का मख्य अंग–बन गई। इस मानसिक घर्ष का चित्रण ही अपने आपमें एक अन्त बन गया, वही उपन्यास का ध्येय हो गया।

समकालीन उपन्यासों में नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि उसकी पहचान, स्वतंत्रता, प्रेम, विवाह, मातृत्व, करियर और सामाजिक मुद्दों को गहराई से चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों में नारी के संघर्षों, चुनौतियों और सफलताओं को वास्तविक रूप से दर्शाया गया है।

कुछ उदाहरण

- प्रेमचंद के उपन्यासः "गोदान", "निर्मला", "रंगभूमि"
- जयशंकर प्रसाद के उपन्यासः "कामायनी", "आँसू"
- यशपाल के उपन्यासः "दिव्या", "झूठा सच"
- अज्ञेय के उपन्यासः "शेखरः एक जीवनी"
- मन्नू भंडारी के उपन्यासः "आपका बंटी", "महाभोज"
- कृष्णा सोबती के उपन्यासः "मित्रो मरजानी", "सूरजमुखी के फूल"

प्रेमचंदोत्तर काल से आज तक के उपन्यासों में यथार्थ जीवन में काफी महत्वपूर्ण होनेवाली कुछ समस्याओं का चित्रण नहीं हुआ था। शिक्षा के क्षेत्र में बालक–बालिकाओं में विभेद, उनके साथ व्यवहार तथा उनके लालन–पालन में पक्षपात, जीवन और व्यक्तित्व के विकास के लिए लड़कियों के लिए दी जानेवाले उपयुक्त अवसर की कमी, नारी जीवन से संबंधित इन पहलुओं की ओर उपन्यासकार ने ध्यान नहीं दिया । नारी के सौंदर्य को अनावश्यक रूप से दिया जानेवाला महत्व और इस कारण कुरूपता का नारी के लिए एक अभिशाप होना, उसके अपमानजनक, कष्टमय असाधारण जीवन और मनोजगत् का चित्रण अभी उपन्यासों में होना बाकी है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पुरुष मन का जितना मनोविश्लेषण मिलता है उतना नारी–मन का नहीं मिलता। अधिकांश उपन्यासों में पुरुष के परिप्रेक्ष्य में ही नारी के मनोविज्ञान का अध्ययन किया गया है जिसके कारण नारीं–मन के बहुत से सूक्ष्म पहलू अछूते रह गये है। नारी के बाल मनोविज्ञान का चित्रण भी कहीं कहीं ही दिखाई देता है। नारी के हर पहलु और हर विशेषता का चित्रण उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में होता दिखाई देता है। आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी जीवन के एक और पहलू पर भी प्रकाश नहीं डाला गया है। सन् 1935 के आर्थिक संकट से ही भारतीय नारी अर्थोपार्जन की ओर ध्यान देती आई है और सन् 1950 तक हम अनेक पुरुषो चित धन्धों में नारी को प्रवेश करते पाते है। क्लर्क, अध्यापिका, लेडी डाक्टर, लेडी वकील, राजनी तिक कार्यकर्की, समाज–तेविका, अभिनेत्री, गायिका के रूप में यहाँ तक कि मंत्रालय और दूतावास में भी नारी की प्रतिष्ठा हो चुकी है परंतु नारी के इन अनेक रूपों में से उपन्यास लेखकों ने केवल दो–तीन की ओर ही ध्यान दिया है। इस प्रकार के व्यवसाय अपनाने से उसके पारिवारिक, सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन आता है, जिन कठिनाइयों का उत्ते सामना करना पड़ता है, उनका कोई उल्लेख हिन्दी उपन्यासकारों ने नहीं किया है। परंतु उषा प्रियंवदा के तीनों उपन्यासों में इस प्रकार का प्रशंसनीय प्रयास हमें देखने को मिलता है।

प्रेमचन्द के समान नागार्जुन भी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे, उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य सृजन में लगा दिया। उन्होंने उपन्यास, कविता, कहानी, संस्मरण, निबंध आदि साहित्यिक विधाओं को अपनी लेखनी का विषय बनाया। प्रेमचन्द के निधन (1936 ई०) के बाद दस ग्यारह वर्षों तक किसी भी उपन्यासकार ने ग्रामीण जीवन को आधार बनाकर उपन्यास नहीं लिखा। विनय कुमार पाठक के शब्दों में "नागार्जुन स्वतंत्र भारत के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने प्रेमचन्द की औपन्यासिक परम्परा को नये आयाम देकर आगे बढ़ाया।" प्रेमचन्द की भाँति नागार्जुन ने भी नारी चेतना एवं विमर्श के प्रति अपने दृष्टिकोण प्रकट किये हैं, परंतु प्रेमचन्द में जहाँ संवेदना की अधिकता है वहीं नागार्जुन में चेतना की। इसलिए नागार्जुन के उपन्यसों की स्त्रियाँ अपनी भिन्न अस्मिता एवं पहचान बनाती हैं। नागार्जुन के बहुचर्चित उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' (1948) में ग्रामीण जीवन के आधार पर एक उच्चकुलीन विधवा के माध्यम से, भारतीय नारी के दुर्भाग्य की कहानी कही गई है, इसमें विधवा नारी के साथ–साथ सधवा नारी की दुरावस्था का भी चित्रण हुआ है। गौरी रतिनाथ की चाची और उपन्यास की नायिका है। रूप सुन्दरी गौरी का विवाह दरिद्र और रोगी वैद्यनाथ से हुआ परन्तु बेटे उमानाथ और बेटी प्रतिभामा को जन्म देकर ही विधवा हो गई। रतिनाथ गौरी के विधुर देवर जयनाथ का बेटा है। गौरी के इच्छा के विरूद्ध जब देवर से गर्भ ठहर जाता है और जब गौरी का पुत्र उसे तिरस्कार करने लगता है तो रतिनाथ ही चाची के लिए जीने का सहारा बना रतिनाथ चाची के विषय में कहता है– "व्रतसंयमी आत्मनिर्भर चाची ने अपना जीवन तापसी की तरह बिताया बेटे उमानाथ से तो इतना तिरस्कार पाया कि वह माँ के अंतिम संस्कार के लिए भी नहीं आया।" उपन्यास के अंत तक आते–आते चाची के सारे दोषों और कलंक का परिमार्जन हो जाता है। गौरी की आँखों में छलकते वात्सल्य के तरल रूप को देखकर रतिनाथ का चेहरा खिल जाता है। रतिनाथ द्वारा चाची के प्रति कहे गये ये शब्द "ऐसा लगता है कि दिन व दिन तुम देवता होती चली जा रही हो" चाची के चरित्र में निहित उदात्तता की ही अभिव्यक्ति है। 'उग्रतारा' में नर्मदेश्वर की भाभी तेज ओज की प्रतिमा है। इस नारी के अंतरंग हृदय में सामाजिक व्यभिचार की शिकार हुई उगनी के प्रति उनका कितना सद्भाव है, यह उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है – "लुचे लफंगे अपना ही मुँह काला करते हैं। हमारा तुम्हारा मुँह तो शीशे से भी ज्यादा साफ रहेगा।" नागार्जुन के ये नारी पात्र उदात्त एवं उच्च भावनाओं से ओत प्रोत है।

निष्कर्ष : हिन्दी उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण समय के साथ बदलता रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक, हिन्दी उपन्यासों ने नारी के विभिन्न रूपों, अनुभवों और संघर्षों को चित्रित किया है। इन उपन्यासों ने नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण को बदलने और उसे अधिक समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

References :

1. सिमोन, बी (1949), द सेकेंड सेक्स, फांस।
2. दास. आर (2016), अनभाई. कम।
3. प्रेमचन्द, गोदान (1936), गोदान इलाहाबाद : हंस प्रकाशन ।
4. गबन, गोदान इलाहाबाद : हंस प्रकाशन ।
5. मंगलसूत्र अप्रकाशित, इलाहाबाद, हंस प्रकायान ।
6. गोयनका, के. के. 1962, प्रेमचन्द कहानी रचनावली (खण्ड तीन) नई दिल्ली, साहित्य अकादमी।
7. खेतान.पी. (1990), स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स।